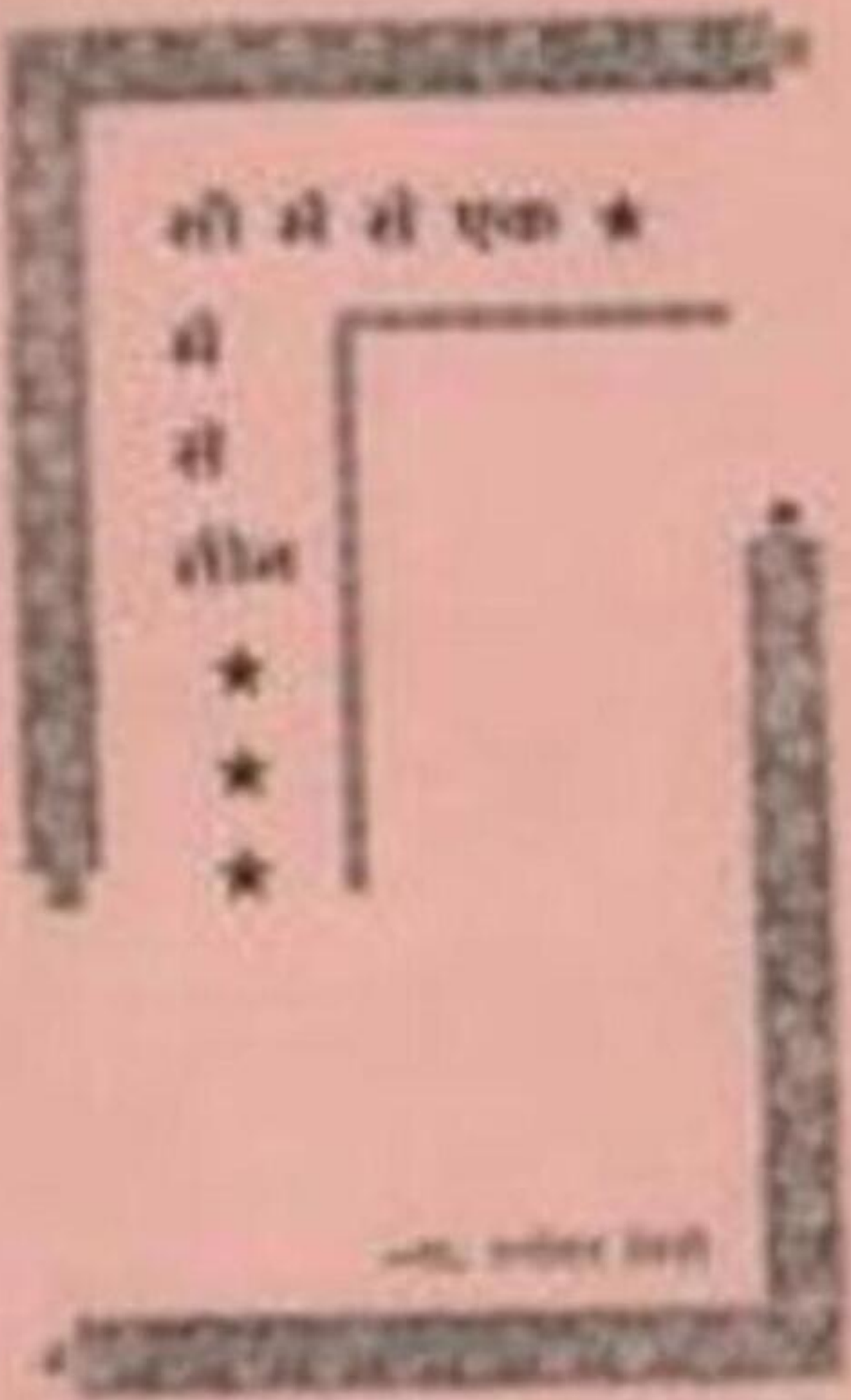

सौ में से एक, सौ में से तीन

मा० दत्तोपंत ठेंगड़ी

यह हमारा कार्य बहुत लम्बा है। "परं वैभवं नेतुमेतत् स्वराष्ट्रम्" तो बहुत ही दीर्घकाल लेने वाला है। अत्यधिक परिश्रम लेने वाला, ऐसा अपना कार्य है, यह हम लोग जानते हैं। अब जहां इस तरह का ध्येय बहुत दूर का है, वहां पद्धति ऐसी है कि एकदम आखिरी मंजिल जो है इसी का विचार करते हुए ध्यान में रखना है, लेकिन पहला कार्य, दूसरा कार्य इस तरह से जो कुल मिलाकर प्रवास होगा - इस प्रवास की कुछ ऐसी किश्तें, इन्सटालमेण्ट, स्टेज तय करके एक-एक इन्सटालमेन्ट पूरी करनी है। ऐसा ही जो लम्बा प्रवास करते हैं उनकी यह पद्धति हाती है।

किसी ने कहा है कि १००० मील पैदल चलना है। आखिर उसका प्रारम्भ पहले कदम से ही होता है, ऐसा नहीं होता कि पहला ही कदम दो-चार मील का ले लिया। पहला कदम ३०-३५ (इंच) का होगा। धीरे धीरे आगे बढ़ेगा। जो हिमालय के शिखर पर चढ़ते हैं वो पहले ही सोचेंगे कि २९,००० हजार फीट ऊँचा जाना है तो देखते-देखते ही चक्कर आ जायेगा, इसलिए २९,००० हजार फीट जाना है यह मन में लक्ष्य रखते हैं, लेकिन पहला चरण ३० फीट उपर जायेंगे, बेस बनायेंगे, फिर कैम्प करेंगे, फिर ३०-३५ फुट ऊपर जायेंगे, कैम्प करेंगे। ऐसे धीरे-धीरे उपर जाते हैं।

हमारे यहाँ ऐसा कहा गया है- **"शनै: पन्था शनै: कन्था शनै: पर्वतमस्तके, शनै: विद्या शनै: वित्तं पंचेतानि शनै: शनै:।"** यह सब शनै: शनै: होता है।

पन्था - मार्ग, कन्था - कम्बल, पर्वत मस्तक पर, शिखर पर क्रमश: जाना पड़ता है, विद्या भी क्रमश: प्राप्त करनी पड़ती है, इस प्रकार विशाल ध्येय को भी क्रमश: प्राप्त किया जाता है।

शायद इस दृष्टि से हो या कुछ तात्कालिक परिस्थिति के परिणाम स्वरूप हो, हम जानते हैं कि १९३९ में परम पूजनीय डॉक्टरजी ने एक आदेश सब लोगों को दिया था कि भाई शीघ्रातिशीघ्र ग्रामीण क्षेत्र में सब सौ हिन्दुओं में से एक हिन्दू और शहरी क्षेत्र में सौ हिन्दुओं में तीन हिन्दु, इतने स्वयंसेवक हमको बनाने हैं - ऐसा कहा। जैसे मैंने कहा कि यह जो फेज्ड प्रोग्राम वाली बात है, उसके पीछे भाव हो सकता है - तात्कालिक परिस्थिति, याने महायुद्ध चल रहा था, इंगलैण्ड महायुद्ध में था, इंगलैण्ड की कठिनाई में यह हिन्दुस्तान की अपोरच्युनिटी है, यह भी एक विचार था। क्या इसका लाभ उठाया जा सकता है, यह भी सामयिक विचार मन में उठता था। दोनों

बातों का विचार हो सकता है, परिणाम स्वरूप ऐसा ही आदेश परम पूजनीय डॉक्टर जी का आया था १९३९ में कि ग्राम में १ % एवं शहरी क्षेत्र में ३ % हो इतनी संख्या होनी चाहिये।

उस समय मैं, मेरे साथी - हम कॉलेज में पढ़ते थे, हमको तो लगा कि यह जो लक्ष्य दिया है - बड़ा छोटा है, मोडेस्ट है। कोई खास कठिन बात इसमें नहीं। १९४१ में हमारा जो पुराना मध्यप्रदेश था, जिसमें ८ मराठी जिले थे, १४ हिन्दी जिले थे। महाकौशल के तो उस समय पुराने मध्यप्रदेश का ईस्टर्न (पूर्वी) केम्प जबलपुर में हुआ था। उस समय परम पूजनीय डॉक्टरजी की मृत्यु हो चुकी थी। परम पूजनीय गुरुजी ने सरसंघचालकत्व का दायित्व ग्रहण किया था और रिपोर्टिंग वगैरा जो हुआ तो विदर्भ के सरकारी ८ जिले, संघ के जिले १०, तो एक संघ के जिले के कार्यवाह ने ऐसा रिपोर्ट किया कि जो लक्ष्य दिया है १ %, वह हमारे जिले में हमने तो पूरा कर लिया हैं। तो सबको बड़ी प्रसन्नता हुई कि चलो एक जिले में लक्ष्य पूरा हुआ। बाद में समारोह का जब भाषण गुरुजी का हुआ तो अन्य बातों के साथ इसका भी जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि ऐसा कहा गया है कि एक जिले में हमारा यह लक्ष्य पूरा हुआ है, हुआ होगा तो यह आनंद की बात है। लेकिन डॉक्टर जी ने कहा उसको समझे क्या? डॉक्टरजी के कहने का मतलब यह नहीं था कि १०० में १ % और १०० में ३ % कोई भी एक लूला-लंगडा, बहरा व अंधा निकाल लिया जाय। कोई अच्छा कार्य करना याद नहीं है, Good for nothing fellow, ऐसा कोई १०० में से एक आदमी खड़ा कर दो तो प्रतिशत पूरा हो गया ऐसा था क्या? तो ऐसा नहीं, उन्होंने ऐसा अवश्य कहा १०० में से १, १०० में से ३, सौ में से ऐसा स्वयंसेवक खड़ा करना है जो बाकी सम्पूर्ण ९९ लोगों का सम्पूर्ण विश्वास प्राप्त कर सकता है, बाकी ९९ लोगों का पूर्ण विश्वास प्राप्त कर सकता है जिसके विषय में सबके मन में यह धारणा हो - यह अच्छा आदमी है, नेक आदमी है, यह ठीक सलाह देगा, कोई भी समस्या निर्माण हुई हम इसके पास गये तो इसका मार्गदर्शन ठीक रहेगा, यह नि:स्वार्थ है, इस दृष्टि से सम्पूर्ण गाँव पर प्रेम करने वाला है, यह जो बात कहेगा वह गाँव की भलाई की ही बात रहेगी, उसका इसमें कोई निजी स्वार्थ नहीं रहेगा - ऐसा पूर्ण विश्वास जिसके बारे में बाकी बचे सब हिंन्दुओं में हैं, इस तरह एक व तीन आदमी स्वयंसेवक के नाते खड़े करना। दूसरे अर्थ में एक और तीन

आदमी जो खड़े करने हैं, वो शेष हिन्दु समाज का नेतृत्व करने को योग्यता रखने वाले यह एक और तीन, ऐसा उन्होंने कहा, यह अर्थ हम लोगों को समझना हैं।

हम लोग तो समझते थे कि ऐसा कोई एक अदमी खड़ा कर देंगे, काम पूरा हो जायेगा। अब उसके पीछे नया अर्थ आ गया कि कितनी योग्यता रखने वाला चाहिये कि बचे हुए शेष हिन्दू समाज का नेतृत्व करने की योग्यता रखते हैं और बाकी का समाज जिन पर पूरा भरोसा रखता हैं, ऐसा एक आदमी गाँव में, शहर में ३ आदमी निकर में खड़े करने हैं। अब इसके कारण हम स्वयंसेवकों में, उस समय हम कालेज में थे बड़ी चर्चा हुई कि यह बहुत कठिन कार्य हैं, लेकिन मैं और मेरे एक-दो साथी थे जो अगले साल प्रचारक के नाते एकट्ठा ही निकले, हम उस समय नागपुर में थे तो हम को लगता था कि यह लोगों को कठिन क्यों लगता हैं। गुरुजी ने इतना ही कहा कि जो नेता बन सकते हैं, नेतृत्व कर सकते हैं, ऐसे लोग खड़े करो। तो हमने कहा कि यह तो सरल धंधा है, नेता बनना कुछ वैसी बात थोड़े ही है, क्योंकि ऐसा था कि जब हम छोटे बच्चे थे तो कांग्रेस का आन्दोलन चलता था, हम वानर सेना में थे, वानर सेना याने कांग्रेस की आज कल ज़ैसे हर पार्टी की यूथ संस्था रहती है, उन दिनों कांग्रेस में बालक लोगों की सेना होती थी तो हम लोग वानर सेना में काम किये हुए थे। हमारे प्रदेश के विभिन्न राजनीति के श्रेष्ठ महापुरुष उनको नजदीक से देखा हुआ था, वे सब नेता लोग थे। नेता बनने के लिए क्या-क्या करना पड़ता है वो तरकीब हमने नजदीक से देखी थी। हाँ, खुद हमने उसका ट्रायल नहीं किया था, क्योंकि हम छोटे थे। तो हमें इतना आत्मविश्वास था कि नेता बनो तो हम बन सकते हैं, बाकी कोई बने न बने हम नेता बन सकते हैं, क्योंकि हमने उनका अध्ययन किया है, इतने नेताओं का नजदीक से दर्शन किया हैं, इसमें कठिनाई तो खास नहीं है। तो मेरा और हमारे एक साथी का हौसला बढ़ गया कि हम गुरुजी के बताये हुए मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं। नेता ही बनना है, बड़ी अच्छी तरह से अब, चुकिं हम वानर सेना में छोटे थे हमारे पास वो काम आता था, वह अटेंड करने का काम। नेताओं की आदतों कैसी होती हैं, व्यवहार कैसा होता है - सब जानते थे और वह तरकीब भी ऐसी थी, हम भी कर सकते थे। अब उदाहरण के लिए हमारे एक नेता थे, उनको केसरी कहा जाता था। जो नेता होता था उसको कुछ टाइटल्स होती थी। प्राय: प्राणियों की टाइटल्स रहती है। कोई केशरी रहता है, कोई शार्दूल रहता हैं। तो हमारे एक नेता प्रदेश केशरी थे। भाषण देते थे, भाषण अखबार में जाय इसकी तो

व्यवस्था होती थी, लेकिन मुश्किल तो यह थी कि कोई जोश रहता ही नहीं था, भाषण भी रोता हुआ और शक्ल भी रोती हुई थी, लेकिन जब तक भाषण में तालियां नहीं बजती तब तक उसको अच्छा भाषण नहीं कहा जा सकता। तो फिर पार्टी के सामने समस्या थी कि तालियां कैसे बजे। तो आखिर में हमको जो एक आदेश मिला कि तुम लोग जरा स्टेजिक पोजिशन में कुछ इधर कुछ उधर बैठो। श्रोताओं में कोई इधर कोई उधर बैठा। और कहा कि जब मैं ऐसा हाथ करुंगा तो यह इशारा समझना कि तालियां बजानी हैं। तो हम छोटे ही बच्चे थे, हमने सोचा ठीक है। तो जैसे नेताजी ऐसे करते, हम तालियां बजाते थे। जब हम तालियां बजाते, और लोग भी तालियां बजाते थे। अब एक समय यह हुआ कि कहाँ बजाना, कब बजाना हम लोग ऐसा नहीं समझते थे। बस ऐसा याद कर लिया कि ऐसा हाथ करने पर ताली बजाना। अभी हमारा केशरी यह हमारा नेताजी एक बार भाषण दे रहे थे कि काटने वाली मक्खी उनके नाक के पास आयी, इसलिए उनके हाथ का हटाना हुआ कि हमने तालियां बजा दी। सबको समझ आ गया की कुछ तो गड़बड़ हैं। बाद में वह रहस्य खुल गया - यह सारा प्लैण्ड था। दूसरे हमारे शार्दूल थे। वह केशरी जी से भी बढ़कर थे। उनकी स्टाइल ऐसी थी कि नागपुर से बम्बई निकलते थे तो 'मैं नेता हूँ' इसकी एडवरटाइजमेंट कैसी हो, तो हर स्टेशन पर स्वागत होना चाहिए, इसलिए उन्होंने हर गांव में अपने दो एक एजेन्ट रखे थे। उनका काम कोई ज्यादा नहीं होता था, जब नेताजी नागपुर से बम्बई जायेंगे तो पहले उनका टेलीग्राम चला जाता कि स्टेशन पर आ जाये, वो स्टेशन पर आ जाते और जिन्दाबाद और जय-जयकार शुरू कर देते और फिर वहां ५०-६० लोग इकट्ठा हो ही जाते यह देखने के लिए कि क्या हैं - क्या नहीं। फिर एक-एक के हाथ में माला पकड़ा देते, फिर पहनवा देते। तो ५०-६० मालाएं हर स्टेशन पर गले में पड़ जाती। पर उसके पीछे भी एक तरकीब थी। हर स्टेशन पर कोई माला का खर्चा नहीं करना पड़ता था। हमारे नेताजी फर्स्ट क्लास के कमरे में बैठते थे और उनके प्राइवेट सैक्रेटरी पास के थर्ड क्लास के डिब्बे में बैठते थे। नेताजी के कमरे में खाली टोकरा रहता था और प्राइवेट सेक्रेटरी के टोकरे में ५०-६० पुष्प मालाएं भरी रहती थी। अगले स्टेशन पर यह नेताजी अपनी मालाएं खाली टोकरे में रखकर, उतर कर प्राइवेट सेक्रेटरी को सौंप देते और प्राइवेट सेक्रेटरी मालाओं को एक-एक के हाथ में दे देता था। यानी एक बार ही खर्चा हुआ, पर हर स्टेशन पर स्वागत हुआ। यह सारी प्रक्रिया हम बचपन से जानते थे तो

हमने सोचा कि परम पूजनीय गुरुजी ने जो यह आदेश दिया है उसके कारण हमारे अधिकारी परेशान हो रहे हैं कि नेतृत्व करने वाले लोग कैसे निर्माण हो सकते है। हम परेशान नहीं हुए, क्योंकि हम जानते थे कि नेता होते हैं वे सामान्य जन के अनुसार व्यवहार नहीं करते, थोड़ा सीनातान कर चलना चाहिये, तीरछी टोपी लगानी चाहिये, रास्ते में जाते हुए किसी ने प्रणाम किया तो पूरा प्रणाम नहीं लेना चाहिये। पूरा प्रणाम लेने वाले उसके बराबर के हो जाते हैं। तो यदि वो प्रणाम पूरा करते हुए यह दिखाना कि तुम्हारा प्रणाम मैंने स्वीकार कर तुम्हारे पर कितना उपकार किया हैं मैंने।

तो हम सब इस बात में जुट गये कि इन सब बातों की नकल करेंगे और आइने के सामने हमने यह अभ्यास शुरू कर दिया। बाद में प्रचारक भी हो गये, किन्तु दो महिने हुए थे, ओ० टी० सी० के दो माह पूर्व गये थे। संघ शिक्षा वर्ग में पहले दूसरे प्रदेश में गये थे। मैं केरला में गया था। वहाँ से दो वृद्धों को ओ० टी० सी० देखने लाये थे। संघ शिक्षा वर्ग का समारोप हो गया। इन दोनों को पहली मंजिल पर टिकाया था, नीचे उनका बिस्तर लाकर तांगे में डालना था तो मैंने उसको (मित्र प्रचारक) बुलाया कि "भाई इधर आओ, तुम एक बिस्तर उठाओ, मैं एक बिस्तर उठाता हूँ।" तो 'मैं आता हूँ' कह कर वह आया नहीं। वह आया नहीं तो मैंने दोनों बिस्तर उठाये और नीचे तांगे में रख दिये। उनको स्टेशन पर पहुंचा दिया। बाद में वो साथी हमसे मिले, बोले- "भाई देखो तुम मुझसे नाराज हो गये होंगे।" मैंने कहा- "क्यों।" बोले- "मैंने कहा कि मैं आ रहा हूँ और मैं नहीं आया।" मैंने बोला- "तुमको कोई काम आ गया होगा, इसलिए नहीं आये, इसमें नाराज होने की क्या बात है।" वह बोले- "तो ठीक है तुम नाराज नहीं हुए, पर मैं नाराज हो गया।" मैंने कहा कि "भाई कारण क्या हो गया।" तो बोले- "तुम्हारी कोई प्रतिष्ठा है कि नहीं, तुम प्रचारक हो, नेता हो, यह तुम्हारे दो स्वयंसेवक वो तुम्हारे अनुयायी हैं, फोलोअर्स हैं और तुम अपनी डिगनिटि नहीं रखते हो, तुमने उनके बिस्तर अपने कंधे पर उठा लिए, क्या तुम्हारी डिगनिटि रही, तुम्हें कौन अपना अधिकारी मानेगा।" हमने कहा कि "भाई वे बूढ़े लोग थे, कहाँ बिस्तर उठाते।" उन्होंने कहा कि "बूढ़े होंगे, पर आफ्टर आल हमारे फोलोअर्स हैं, हमें डायरेक्ट ही देना है, आदेश ही देना है।" हमने कहा- "भाई गलती हो गई।" बात वहीं रुक गई। तीसरे दिन ऐसी घटना हुई कि परम पूजनीय श्रीगुरुजी के यहाँ हम दोनों थे, किसी शादी विवाह के कारण माताजी दूसरी तरफ मंडप में चले गये थे और श्रीगुरुजी थे और हम दोनों ही थे। इतने

में दिल्ली के संघचालक मा० प्रकाशचन्द्रजी भार्गव आये तो गुरुजी ऊपर से नीचे उनको रिसीव करने आये, उनके साथ चार-पांच लोग और थे, उनको लेकर ऊपर जाने लगे, रास्ते में हमको कहा की भार्गव जी को तुरन्त जाना है, तुम दोनों ८ कप चाय बनाकर जल्दी ऊपर ले आओ। वो तो चले गये, हम असमंजस में पड़ गये, जीवन में कभी चूल्हा जलाया ही नहीं, चाय कैसे बनती है, चाय कैसे पड़ती है, चीनी कितनी पड़ती है, कुछ पता ही नहीं। वो ऊपर चले गये, हम चूल्हे के साथ झगड़ा करने लगे, हमने जो किया उससे अग्नि तो निर्माण हुई, धुंआ ही धुंआ कमरे में भर गया। तो इधर हम शर्म के मारे यह कर रहे थे कि इतने में श्रीगुरुजी ठहाके से हंसकर अन्दर आये और बोले- "मैं यह जानता था कि तुमसे जमने वाला नहीं। देखो! कैसे किया जाता है।" और बैठ गये, जैसे हम जमीन पर बैठते हैं; और बोले- "देखो! पहली लकड़ी ऐसे रखते हैं, फिर ऐसे रखते हैं, हवा आनी चाहिए, फिर केरोसीन डालो, फिर ऐसे जलाना चाहिए, देखो अग्नि फिर कैसे जलती है।" फिर दूसरे को पूछा- "आठ कप के लिए चाय-चीनी कितनी लगती है।" हम क्या बोले, हमको कुछ आता ही नहीं था। ८ चम्मच चाय, १६ चम्मच चीनी, वो सब डालकर और कहा कि पानी जब उबल जाये, चाय बन जाये तो फिर ऊपर ले आना। वो चले गये। चाय क्या बनी, कैसी बनी - यह तो हमको किसी ने बताया नहीं, पर रात को वो प्रचारक और मैं इक्ट्ठा बैठे, तो बोले कि "आज हमारे आश्चर्य को धक्का लगा।" तो मैंने कहा कि "क्या हुआ।" बोले- "हमारे सर्वोच्च, सरसंघचालकजी ने नीचे आकर चूल्हा जलाया, हमारे सामने इनकी प्रतिष्ठा क्या रही?" हमने कहा कि "भाई तुम ऐसा करो, तुम गुरुजी को समझाओ कि संघचालक का व्यवहार कैसा होना चाहिये?"

वह घटना तो हो गई, पर हम दोनों के मन में विचार चक्र चला कि बात क्या है? हम जो हमारे नेता बनने का स्वप्न देख रहे थे, उल्टा ही मामला दिख रहा है। यह चक्कर क्या है, हम लोगों ने विचार करना शुरू किया और जैसे विचार करना शुरू किया वैसे ही दिखाई दिया कि गुरुजी ने जो कहा था १०० में से तीन, जो नेतृत्व रखने की क्षमता रखते हों, तो उनके नेतृत्व की कल्पना अलग थी, ऐसा कुछ हमको लगा। फिर हम देखने लगे की कौन नेता कैसा है, उनका व्यवहार कैसा है, उनका मोटीवेशन कैसा है,

सब देखने लगे, सारा अध्ययन करने के पश्चात लगा कि सारे नेता एक श्रेणी के नहीं, अलग-अलग तरह के नेता हैं।

खासकर ऐसा दिखाई दिया कि दो तरह के नेता होते हैं- एक तो व्यक्तिवादी, अहंवादी। मैं नेता हूँ, मेरा नेतृत्व होना चाहिए, मेरा नाम होना चाहिये यानी मेरे लिए सब कुछ, संस्था भी है तो संस्था का उपयोग मेरी प्रतिष्ठा के लिए कैसे हो सकता है, भाषण भी देता हूँ तो पूछता हूँ कि भाषण कैसा हुआ, कैसा प्रभाव हुआ, इसके कारण मेरा ग्रुप बढ़ेगा क्या? तरह-तरह के प्रश्न हमारे मन में आ जाते हैं तो यह एक व्यक्तिवादी-अहंवादी नेतृत्व है, जिसका जीवन-मूल्य है- पद-प्रतिष्ठा। और दूसरा दिखाई दिया तो हमने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में देखा कि आदर्शवादी नेतृत्व जहां व्यक्ति का विचार नहीं, मेरी पोजीशन क्या है, यह विचार नहीं, कितने ही यहां प्रचारक हो गये, संकड़ों हो गये जिन्होंने सारा जीवन संघकार्य में लगाया, कोई नहीं जानता, कोई नाम नहीं जानता, इससे एक शतांश कार्य कहीं बाहर के क्षेत्र में किया होता तो फोटो वगैरा भी अखबार में आ जाते। यहां सारा जीवन लगा दिया, कहीं फोटो नहीं, कहीं नाम नहीं, कुछ पागलपन की धुन - तो यह दूसरे टाईप का नेतृत्व है। ऐसा कुछ लगा कि जो पद प्रतिष्ठा के लिए नहीं, व्यक्ति के लिए नहीं, अहं के लिए नहीं। तो आदर्श में व्यक्ति विलीन हो गया हैं, स्वयं अपने को भूल गया, अब दुनिया में ऐसा दिखता है कि दोनों तरह के उदाहरण कि व्यक्ति की सामाजिक योग्यता किस बात पर अवलम्बित है। दोनों तरह के विचार।

एक विचार नेपोलियन ने जब वह आदर्शवाद से हट गया तो अच्छे ढ़ंग से प्रकट किया, जो पद प्रतिष्ठा वाले व्यक्तिवादी नेतृत्व का विचार था कि दुनिया में "मेन आर लाइक फिगर्स।" वे अपने-अपने पद के अनुरूप कीमत रखते हैं। सभी व्यक्ति अंकों के समान हैं, आंकड़ों के समान हैं। वे किस पोजीशन में हैं, उस पर उनकी कीमत लगती है। और नेपोलियन ने उदाहरण दिया ११११ हैं। हर एक की कीमत समान है, अन्तरगत मूल्य समान है, पर स्थान के अनुसार कीमत बढ़ जाती है। १, १०, १००, १००० हो जाती है। अत: पोजीशन के कारण योग्यता बढ़ जाती है। व्यक्तिवादी-अहंवादी नेतृत्व का जीवन-मूल्य बड़े अच्छे शब्दों में उन्होंने प्रकट किया।

अब हमारी संस्कृति में जीवन मूल्य अलग प्रकार का है, यह बताया गया है कि पद प्रतिष्ठा के कारण व्यक्ति की कीमत नहीं होती, वह तो अन्तरगत होती है, मूलत: होती है, आन्तरिक होती है। एक कौआ है जो राजप्रसाद के शिखर पर बैठा है और दूसरा गरुड़ है, जमीन पर बैठा है, तो क्या राजप्रसाद पर कौए के बैठने से गरुड़ से कीमत अधिक हो गई, नहीं होती है। वास्तविक योग्यता जो होती है वह अन्तरगत योग्यता होती है, आत्मिक योग्यता होती है, केवल स्थान, पद, पोजीशन के कारण योग्यता का मूल्यांकन नहीं करना चाहिये, यह बात हमारे यहां कही गई है। लेकिन सन १९४७ के पश्चात हमारे देश के सार्वजनिक वायुमण्डल में जीवन-मूल्य ही बदल गये। १९४७ के पहले जीवन-मूल्य अलग थे, हम सब लोग स्वतंत्रता संग्राम में जुटे हुए थे और उस समय यह ठीक है कि करोड़ों लोग तो हिस्सा नहीं ले सकते थे किसी भी संघर्ष में, लेकिन जीवन-मूल्य यह बन गया था कि सरकार की नौकरी भी करते थे, मन में यह समझते थे कि सरकार की नौकरी यह ठीक नहीं, आत्मग्लानि महसूस करते थे, यह ठीक नहीं। देश के लिए जो कष्ट उठायेंगे, आत्म क्लेष उठायेंगे, जेल में जायेंगे, मोटा कपड़ा पहनेंगे, किसी ने चीनी खाना छोड़ दिया था, जब तक देश स्वतन्त्र नहीं होगा तब तक नहीं खाऊँगा, इस प्रकार जो आत्म क्लेष बर्दाश्त करेंगे वे ऊंचे लोग हैं, श्रेष्ठ लोग हैं - ऐसा माना जाता था। माने योग्यता का निष्कर्ष था, वह आत्म निरपेक्ष देश के लिये कष्ट करना यह योग्यता का निष्कर्ष था। अब १९४७ के बाद यदि ऐसा होता कि जैसे स्वराज्य प्राप्त हुआ, खण्डित भारत का ही क्यों न हो, जैसे ही स्वराज्य प्राप्त हुआ वैसे ही हमारे नेताओं ने सभी को दिशा देकर काम में जुटाया होता कि स्वराज्य प्राप्त हुआ है हमारी जिम्मेदारी का अन्त नहीं, प्रारम्भ है, कि "ऐण्ड आफ दी बिगिनिंग।" नही है "बिगिनिंग आफ दी ऐण्ड" है। इस दृष्टि से, स्वराज्य को एक रिवार्ड न समझ कर रेसपॉन्सबिलीटी समझना है, नई जिम्मेदारी हमारे ऊपर आई है, यह कोई पारितोषिक नहीं, जिम्मेदारी है - यह भावना लेकर स्वयं जुट जाते, लोगों को जुटाते, यह नई दिशा जनमानस को मिल जाती। जीवन मूल्य वही कायम रहते जो १९४७ के पहले थे, पर ऐसा नहीं हुआ।

स्वराज्य जो मिला उसे पारितोषिक माना गया, जिम्मेदारी नहीं माना गया। राष्ट्र के पुनर्निमाण के कार्य में सबको नहीं जुटाया गया, तो नेताओं से लेकर अनुयायियों तक

यही समझने लगे कि जो करना था वो कर लिया, कष्ट उठाये हैं, अब जो भी आयेगा उसमें से ज्यादा-से-ज्यादा मैं अपने लिए कैसे समेट सकता हूँ, यही देखना, बाकी अब बचता हैं, बाकी काम करना, क्या करना 'आउट आफ डेट' हो गया, ऐसा लोग समझने लग गये। १९४७ के पहले लोग मानते थे कि कर्म फल का त्याग करना चाहिये। १९४७ के पश्चात यह हुआ कि कितने फल के त्याग से कितना होगा, हिसाब करते हुये त्याग करो, कर्म फल का त्याग नहीं अपितु त्याग का कितना मूल्य होगा, 'हंगर स्ट्राइक' करने के कारण कहां की सीट प्राप्त होगी, कारपोरेशन, एम० एल० ए०, एम० पी० की कितने दिन जेल में जाने के कारण मिनिस्टर बनने की संभावना बन सकती है। सारा बराबर हिसाब-किताब करते हुये फिर कैलक्यूलेटेड सैकरीफाइस, इस तरह हिसाब-किताब किया हुआ त्याग करना, एक ऐसा नया जीवन-मूल्य अपने यहां शुरू हुआ। आदर्शवाद समाप्त होता जा रहा है, हर एक अपने स्वार्थ के पीछे चल रहा है। ऐसा दृश्य दिखाई दे रहा है। भगवान ने मनुष्य का ऐसा स्वभाव निर्धारित किया है कि आज भी मन में दो बातें साथ-साथ नहीं चल सकती है। व्यक्तिवाद एवं आदर्शवाद - दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते। जिस मन में व्यक्तिवाद होगा, वहां आदर्शवाद नहीं होगा और जहां आदर्शवाद होगा वहां व्यक्तिवाद नहीं रह सकता। जैसे जहां अंधेरा होगा वहाँ प्रकाश नहीं होगा और जहां प्रकाश है, वहां अंधेरा रह नहीं सकता, वैसे ही जहां आदर्शवाद है वहां व्यक्तिवाद रह ही नहीं सकता, जहां व्यक्तिवाद है वहां आदर्शवाद रह ही नहीं सकता।

जीसस ने एक जगह ऐसा कहा है कि जिस हृदय के सिंहासन पर शैतान बैठा है उस सिंहासन पर भगवान बैठेंगे नहीं, याने भगवान शैतान के साथ एक ही सिंहासन शेयर नहीं करेंगे। अपने यहां किसी संत कवि ने ऐसा कहा है कि "मैं था तब हरि नहीं, जब हरि तो मैं नहीं, प्रेम गली अति सांकरी, जामें दो न समाई।" जब "मैं" यह भावना थी तब हरि के दर्शन नहीं हुये और जब हरि के दर्शन हुये तो मैं स्वयंभू को भूल गया हूँ, तो प्रेम की गली इतनी संकड़ी है कि ऐसे अवसर पर दो नहीं समा सकते।

हम व्यक्तिवादी या आदर्शवादी किस नेतृत्व को मान्यता देते हैं, यह प्रश्न है कि हम किस प्रकार के नेतृत्व का निर्माण करना चाहते हैं। अब हम कहते हैं कि हमारा यह ईश्वरीय कार्य है, प्रार्थना में भी हम यह कहते हैं कि "त्वदीयाय कार्याय बद्धा कटीयम्।" जो

ईश्वरीय कार्य होगा, वह ईश्यरीय कार्य जिसके साधन मात्र कार्यकर्ता होंगे, उनका मन यदि अपवित्र होगा, स्वार्थी होगा, अहं होगा, स्व केन्द्रित होगा तो ईश्वरीय कार्य के माध्यम बन सकते हैं क्या? जैसे ध्येय पवित्र है वैसे साधन भी पवित्र होना चाहिये। साध्य और साधन दोनों पवित्र होने चाहिये। यदि हमारा ईश्वरीय कार्य है तो साधन के रूप में, माध्यम के रूप में हम लोग हैं तो हमारी प्राइरीटी, हमारी गुणवत्ता क्या होनी चाहिये, यह एक विचार करने का प्रश्न है। हम यदि अहंवादी या व्यक्तिवादि होते हैं तो क्या चार लोगों को इकट्ठा कर सकते हैं, क्या प्रेरणा दे सकेंगे। जैसे अंग्रेजी में कहा है "प्रेम से प्रेम" निर्माण होता है, अहं से अहं पैदा होता है। मेरे मन में यदि विचार रहा कि चालाकी से तिकड़म करके आप सबका शोषण करते हुए आप सबको यूटिलाइज कर मैं अपनी लीडरी ज़माँऊंगा, यह हो सकता है। आज नहीं, कल, परसों आपके मन में आ सकता है कि हम लोगों का शोषण कर यह लीडरी कर रहा है। क्यों न हम इसका एक्सप्लायटेशन करें, हम भी लीडर क्यों न बनें। फोलोअर का कोई नाम नहीं। हमारे देश में एक ऐसी पार्टी रही है जिसमें सब लीडर ही लीडर थे, कोई फोलोअर नहीं था। ऐसा कहा गया है कि- सर्वे यत्र प्रणैतर सर्वे पंडित मानिना: सर्व महत्वमिच्छन्ति राष्ट्र कं तद् विनश्यति।

ऐसा अपने यहां कहा गया है तो इस तरह से जैसा मैंने कहा कि जहाँ सब नेता ही नेता, हर एक आदमी व्यक्तिगत रूप से बड़ा विद्वान, शक्तिशाली है, लेकिन सब मिलकर जो ग्रुप बनता है वह बहुत कमजोर है। "इन्डिविजुअल इज स्ट्रोंगर बट कलेक्टिव वीक।" व्यक्तिगत हरेक व्यक्ति बड़ा स्ट्रोंग है, पर समूह कमजोर हो जाता है। डच सेना की ऐसी बात बताते हैं कि उस जमाने में सेना में भरती होने के लिए बड़े-बड़े अधिकारियों के, जागीरदारों के, ऐसे लड़के आते थे जो बड़े बाप के बड़े बेटे होते थे और उसके कारण हरेक अपने साथ अपना नौकर भी लेकर आता था। आते थे मिलिट्री ट्रेनिंग के लिये, लेकिन अपने नौकर वगैरा लेकर आते थे, फिर नौकर ने ही रसोई बनाना, बूट साफ करना, यहाँ तक कि गणवेश भी नौकर ही पहिना कर उनको बाहर भेजते और ऐसे नौकरों ने मिलकर गणवेश पहनाये हुये हैं, ऐसे परेड ग्राउण्ड पर आते थे। हरेक हर दूसरे की तरफ देखते थे कि अरे यह जागीरदार का लड़का होगा, मैं आफीसर का लड़का हूँ। दूसरा सोचता यह आफीसर का लड़का है, मैं भी तो इण्डस्ट्रीयलिस्ट का

लड़का हूँ। ऐसा कोई किसी का आर्डर सुनने की स्थिति में नहीं। हरेक यही सोचता कि मैं किसी से कम नहीं। इसके कारण उस सेना की हालत कैसी होगी, कोई किसी की सुनता नहीं था तो सभी आर्डर ही देने वाले थे, कोई किसी का पालन करने वाला नहीं, ऐसा इस डच सेना के समान इनका व्यवहार था, ऐसे नेताओं की यह पार्टी, आज इस पार्टी का नाम नहीं रहा। तो क्या इससे संगठन हो सकता है। नेताजी हो सकते हैं, किन्तु संगठन नहीं। अहंकार से चार लोग भी साथ चल नहीं सकते।

हमारा तो ईश्वरीय कार्य है, ऐसा हम कहते हैं। यह ईश्वरीय कार्य है यह बात छोड़ दीजिये। हमारे एक रिश्तेदार फिल्म क्षेत्र में कार्य करते थे, अच्छे एक्टर थे, अच्छे डायरेक्टर भी थे। इन्होंने एक फिल्म की रचना की और उसमें कुछ ख्यातिप्राप्त कलाकारों का सहयोग लिया। इन सबके सहयोग से बनी इस फिल्म की राष्ट्रीय स्तर पर खूब प्रशंसा हुई। डाइरेक्शन इनका था। ख्याति सुनकर इनके मन में भाव आया कि इसमें श्रेय अन्य कलाकारों को भी गया, यह मन को अच्छा नहीं लगने के कारण दूसरी फिल्म बनाई जिसमें किसी से सहयोग नहीं लिया। डाइरेक्शन उत्तम था, किन्तु हुआ क्या - जैसे है "आपरेशन सक्सेसफुल बट पेशेण्ट डेड" अहं भाव के कारण अच्छे कलाकारों का सहयोग नहीं लिया, पिक्चर फैल हो गई। पिक्चर बढ़िया बनी थी, किन्तु मन में यह भाव था कि मेरी ही छवि ऊपर आनी चाहिये, अन्य कलाकारों का नाम नहीं आना चाहिये, इसलिये जितने लोगों का सहयोग लेना चाहिये, लिया नहीं, उसका परिणाम यह हुआ कि पिक्चर फैल्योर हो गई।

जहाँ अहंवाद के कारण, जहाँ कमर्शियल बात है वहाँ भी संगठन ठीक ढ़ंग से हो नहीं सकता। हमारा तो ईश्वरीय कार्य है तो यह कार्य क्या अहंवादी नेतृत्व के आधार पर चलेगा, यह विचार करने की बात है। ईश्वरीय कार्य के लिए तो साधन भी पवित्र चाहिए। अहंवादी नेतृत्व यह कार्य कैसे कर सकता है। इस दृष्टि से हम देखते हैं कि दोनों तरह के नेता दुनिया में दिखाई देते हैं। व्यक्तिवादी नेताओं के उदाहरण तो अगणित हैं। पिछले पांच-सात साल में जिन्होंने अखबार पढ़े हैं उन्हें तो नाम गिनाने की आवश्यकता नहीं, जितने नाम चाहें अखबारों में से नाम निकाल सकते हैं जो अहंवाद और व्यक्तिवादी नेतृत्व करने वाले लोग थे।

आदर्शवादी नेतृत्व करने वाले के मन में अहं का विचार बिल्कुल नहीं रहता, चाहे हमारे देश के लोग हों, चाहे विदेश के लोग हों। अहं का विचार उनके मन में बिल्कुल नहीं रहता। उदाहरण के लिए - एक समय अमेरिकन स्वातन्त्र्य संग्राम में ऐसा आया था कि वे जीतने वाले थे और उसी समय जो वहां के पोलीटीशियन थे उनके मन में वहाँ के चीफ कमाण्डर जार्ज वासिंगटन उनके विषय में ईर्ष्या का भाव जागृत हुआ। वो आपस में बात करने लगे कि अरे इसको हमने कमाण्डर इन चीफ अपॉइण्ट किया और आज इसी के नाम की चर्चा हो रही है। इसकी सेना विजय प्राप्त करती जा रही है। हम लोगों की चर्चा कहीं नहीं होती, तो जरा इसकी टांग खींचनी चाहिये, नहीं तो यह हमारे ऊपर चला जायेगा। अब टांग खींचने का रास्ता क्या था? यह तो बिचारा लड़ाई के मैदान में था। यह जो चीजे चाहता था - जैसे सिपाहियों के लिए कपड़े, अनाज, बूट, जो भी सामान चाहता था, उपलब्ध होते हुए भी, भेजने में देरी कर देते थे। इससे क्या हुआ, इसकी बदनामी होगी, सिपाही इससे नाराज होंगे, जनता में बदनाम हो जावेगा, विजय प्राप्त होने में देरी होगी, इसकी लोकप्रियता घटेगी, ऐसा सोचकर उन्होंने सबोटेज किया, लेकिन जनता के भी यह बात ध्यान में आई, नाराज होकर सिपाहियों के नेता यानि इसके असिस्टेण्ट डेपुटेशन लेकर जार्ज के पास आये और कहा कि अब तो लड़ाई समाप्त होने वाली है, विजय हमारे हाथ आने वाली है, लेकिन इसके पश्चात ये जो गद्दार लोग हैं, इनके हाथ में सत्ता मत दीजिये, क्योंकि इनके सामने ध्येय यह प्रमुख बात नहीं हैं। इनको लोकप्रियता की ही ज्यादा फिक्र है, इनके हाथ में देश जायेगा तो बर्बाद करेंगे। आज देश में हमारी जो सेना है जिसके आप कमाण्डर इन चीफ हैं, आपके अलावा कोई शक्ति केन्द्र नहीं है, सीधे आप देश की हुकूमत अपने हाथ में लीजिये, आपका कोई विरोध करने की क्षमता नहीं रखता। अब इतनी जब अनुकूलता थी तब यदि जार्ज जो अहंवादी-व्यक्तिवादी होते तो कहते- ठीक है, मैं सत्ता हाथ में लेता हूँ। पर यह विचार उनके मन में नहीं था। आदर्शवादी नेता थे उसके कारण उन्होंने कहा कि नहीं! मैं हाथ में सत्ता नहीं लूंगा। विजय प्राप्त हो गई उसके पश्चातत विधान बनाने की समिति बनाई। विधान के अन्तर्गत चुनाव हुए, यह बात ठीक है कि उस चुनाव में भी प्रथम राष्ट्रपति के नाते उनको ही चुन लिया, पर सीधे सत्ता हाथ में लेने की गुजाइंस थी। इतना मोह वो नहीं कर सके। कोई भी व्यक्तिवादी-अहंवादी नेता ऐसा नहीं टाल सकता।

ऐसा उदाहरण ईटली में भी आता है। ईटली को जागृत करने का सारा कार्य जोसेफ मैजेनी ने किया। उसको इटली का राष्ट्रपिता ऐसे कहा जाता है, लेकिन जिस समय लड़ाई का मौका आया तो उसने अपने सब अनुयाइयों को इकट्ठा किया और बताया कि देखो अभी तक जागरण और संगठन का कार्य था, जिसमें मैं माहिर हूँ, अब लड़ाई का काम है, मैं यह युद्ध-शास्त्र नहीं जानता, ऐसे ही नेतृत्व के अन्दर कार्य करना चाहिये जो युद्ध-शास्त्र जानता हो और अपने साथ जोसेफ गैरीबाल्डी है। वास्तव में उसको ज्यादा लोग नहीं जानते थे, जोसेफ गैरीबाल्डी जो वह अच्छा युद्ध नेता है, हम सब इसे अपना नेता माने एवं इसके अण्डर में हम कार्य करें और जिसको राष्ट्रपिता कहा गया वह जोसेफ मैजेनी जिसने जागरण किया था, पूरा संगठन किया था वह भी आज युद्ध की आवश्यकता है यह समझकर उसी ने गैरीबाल्डी को नेता बनाया और स्वयं जोसेफ मैजेनी गणवेश पहन कर हाथ में राइफल लेकर गैरीबाल्डी की कमान के नीचे सिपाही के रूप में खड़े हो गये, इस कारण बाकी लोग भी खड़े हो गये।

सन् १९८० के हिन्दुस्तान में आज क्या यह हो सकता है, विचार कीजिये? आज जो मूल्य नेतागिरी के चल रहे हैं उसमें ऐसा हो सकता है क्या? लेकिन गैरीबाल्डी ने भी कमाल किया, उसने लड़ाईयाँ की, राजसत्ताओं को हटा दिया, सम्पूर्ण इटली को स्वतन्त्र किया और इटली को स्वतंत्र करने के पश्चात विक्टर एमुअल को राजा बनाया। जैसा पहले सोचा गया था उनका राज्याभिषेक हुआ और राज्याभिषेक होने के पश्चात उन्होंने सीधा कहा कि अब मेरा काम हो गया, यह आपकी तलवार लीजिये, मैं अपनी खेती पर जा रहा हूँ। (केकरी आइलैण्ड पर गांव था) अब मैं काम करने जा रहा हूँ। लोगों ने कहा साहब आपने इतना कार्य किया है, आपने ही तो देश को आजाद कराया, आप मंत्री बन जाइये, कम से कम कमाण्डर बन जाइये, उन्होंने कहा यह धन्धा मेरा नहीं, मुझे लिमिटेड कार्य दिया गया था, जितना मुझे करना था मैंने किया है, अब फिर से अपनी खेती करूंगा। उन्होंने बताया कि इस समय देश का मैं मंत्री नहीं बनना चाहता, क्योंकि अब तक काम लड़ाई का था, वह युद्ध का कार्य मैं जानता था, अब इसके बाद कुटनीति का काम है और कुटनीति का काम मैं नहीं जानता। आपका जो प्राइममिनिस्टर है कैबूर, यह कार्य अच्छी प्रकार से कर सकता है और उन्होंने सारा दायित्व कैबुर को सौंप दिया। परन्तु भारत में वर्तमान में (१९८०) में चल रहे "किस्सा

कुर्सी का" में यह सम्भव हो सकता है क्या? आज तो नेता केवल "मैं-मैं" करने वाले ही रह गये।

परम पूजनीय श्रीगुरुजी ने लिखा "मैं नहीं, तू ही।" यह जो भावना उनकी थी, जो यह वृत्ति थी, यह जो भावना थी कि "मैं नहीं, तू ही तू" मेरे साथ ध्येय है, मैं नहीं, यह आदर्शवादी जीवन-मूल्य का उत्कृष्ट आविष्कार है। उत्कृष्ट आविष्कार को लेकर चलने वाले वे ही कुछ बड़ा कार्य कर सकते हैं, संगठन खड़ा कर सकते हैं, यह आदर्शवाद जिनके पास नहीं, वह कोई बड़ा कार्य कर ही नहीं सकते।

हमारे यहां कितने उदाहरण हैं। श्रीकृष्ण वास्तव में पाण्डवों के मार्गदर्शक, गाइड एवं फिलोसॉफर भगवान श्रीकृष्ण थे। यदि नहीं होते तो समय-समय पर पाण्डव इतनी दूर तक नहीं पहुंच सकते थे और श्रीकृष्ण ने यह सोचा होता कि सारे साम्राज्य का मैं अधिपति बनूंगा तो उनको रोकने की ताकत किसी के अन्दर नहीं थी, लेकिन उन्होंने अपने लिये साम्राज्य का विचार नहीं किया, उन्होंने सारी ताकत पांडवों के लिए खर्च की, सारे देश में एक छत्र साम्राज्य खड़ा करने चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित होना चाहिये, देश मजबूत होगा, यह समझ कर और पाण्डव उनको जहाँ अपना नेता मानते थे वहाँ राजसूय यज्ञ आरम्भ हुआ तो अग्रपूजा का अधिकार किसे देना चाहिये तो कई लोगों के विरोध करने के बावजूद अग्रपूजा का मान श्रीकृष्ण को ही मिलेगा, जिसको जितना अधिकार मिलना चाहिये, राजसूय यज्ञ करने वाले भी जिसे अपना नेता मानते थे।

राजसूय यज्ञ में इतना बड़ा आयोजन है, किसने कौनसा विभाग सम्भालना है, सभी ने अपना-अपना कार्य ले लिया। जब भगवान श्रीकृष्ण को पूछा गया तो कहा कि जब सब लोगों का भोजन हो जायेगा तो सबकी झूठी पत्तले उठाने का कार्य अपने जिम्मे लेता हूँ, याने जिसको अग्रपूजा का मान है, चक्रवर्ती बनने वाले पाण्डव जिसको नेता मानते हैं, वह राजसूय यज्ञ में कहता है कि मैं वह डिपार्टमेण्ट लूंगा जो भोजन होने के पश्चात् झूठी पत्तलें उठाने का काम मैं करूंगा। किस तरह का यह नेतृत्व होगा। नेतृत्व स्थाई स्वस्थ नेतृत्व कैसे निर्माण होता है इसके बारे में हमारे विष्णुसहस्त्रनाम में बहुत सुन्दर वर्णन किया है- **अमानी मान दो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोक धृत।** लोक स्वामी, जन नेता यानी प्रक्रिया क्या? जो स्वयं अपने लिए सम्मान की अपेक्षा नहीं करता और दूसरों को सदैव सम्मानित करने, अपने लिए सम्मान की अपेक्षा नहीं करना

जिसके कारण वह स्वयं मान्य हो जाता है। सर्वमान्य हो जाता है। फिर लोक स्वामी इसके जन नेतृत्व जिसके पास आता है, ऐसा जो त्रिलोक धृक, जिसकी धारणा करने वाले भगवान - विष्णु। यह स्वस्थ एवं स्थाई नेतृत्व की प्रक्रिया प्रोसीजर इसमें आती है। यह हमें ध्यान में रखनी चाहिये। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लिए जो अभिप्रेत, सन् १९७९-१९८० के हिन्दुस्तान में यह जो स्वस्थ प्रणाली है, स्वस्थ नेतृत्व है, यह अभिप्रेत है और हमारा अच्छा जो स्वयंसेवक अहंकार करते हुये नेता नहीं बन सकता, स्वयंसेवक अपने को कार्यकर्ता समझकर सबकी सेवा करता है, वह सेवा करने वाला है, उसके कहने पर बड़े-बड़े लोग कार्यरत हो जाते हैं। जैसे प्रचारक की योग्यता स्वयंसेवक से कभी कम भी होती है, पर जब आत्म विस्मृत होकर प्रचारक स्वयं अपने को भूलकर आदर्श में विलिन हो जाता है, उससे अधिक बोद्धिक योग्यता रखने वाले लोग भी उसके कहने पर काम में जुट जाते हैं। जैसे कहा गया है - **आपन बन दास की नाई, सब ही नचावे राम गुसांई।** स्वयं तो दास के समान बन गये हैं, सब ही नचावे राम गुसांई - राम गुसांई एकसा है, स्वयं तो सेवक बन गया है पर सारी दुनिया को नचाता है। ऐसी योग्यता उस छोटे कार्यकर्ता में भी आ जाती है जो ध्येय में विलीन हो जाता है, आदर्श में विलीन हो जाता है। आज चकाचोंध वायुमण्डल के कारण गड़बड़ होने की कोई आवश्यकता नहीं, यह जो सब दिखने वाली बातें हैं, अखबार वाली बातें हैं, जिस प्रकार का हम स्वयंसेवक का विकास एवं निर्माण कर रहे हैं वही राष्ट्र को स्वस्थ दिशा की ओर ले जायेगा। दूसरी कोई बात राष्ट्र का विकास नहीं कर सकती, यह विश्वास मन में रखने की आवश्यकता है। यदि हम ईश्वर को गुरू मानते हैं तो अपनी यह पृथ्वी को एक वैज्ञानिक ने कहा है कि पृथ्वी को जल नाम देना चाहिये था, क्योंकि जहां पानी ही ज्यादा है और यह जो पानी है, तरह-तरह की ऊंचाई से निर्माण होता है और यहां से बहने वाला पानी इसकी तुलना में अरावली के किसी शिखर से निकलने वाला पानी या जल-प्रवाह होगा, उसकी पोजीशन ऊंची होगी या नहीं, हिमालय से निकलने वाला जल प्रवाह कहेगा कि यह अरावली से निकलने वाला प्रवाह कोई प्रवाह है, यह मेरे से छोटा है, लोवर पोजीशन में है और अरावली से निकलने वाला जल-प्रवाह यहाँ से निकलने वाले जल-प्रवाह से कहेगा कि यह मेरे से छोटा है मेरी ऊंची पोजीशन है, मैं ऊंचे स्तर का हूँ। इस प्रकार का गर्व जितने ऊंचे स्थान का जल प्रवाह होगा वह कर सकता है। लेकिन भगवान का नियम एवं नैसर्गिक

नियम क्या हैं, देखिये, भगवान की माया ही ऐसी है कि जितने भी जल-प्रवाह संसार से निकलते हैं, चाहे हिमालय से निकले, आल्पस से निकले, किसी बड़े पर्वत से निकले, किसी भी ऊंचाई से निकले, ईश्वर का ऐसा नियम है कि उनको धीरे-धीरे नीचे आना पड़ता है और अन्त में सभी जल-प्रवाह शरण किसकी लेते हैं, उस महासागर की शरण में जाते हैं जो महासागर सबसे नीचा है। नीचे स्तर का मापदण्ड जिसको माना गया है इस नाते महासागर से ऊंचाई नापी जाती है। फलाना स्थान 'सी लेवल' से कितना ऊंचा है, समुद्र के स्तर से ५००० फीट, २००० फीट ऊंचा है। समुद्र के स्तर से ५००० फीट, २००० फीट ऊंचे नेतृत्व की जो सबसे छोटी कसोटि है, नीचत्व का जो सबसे बड़ा माप दण्ड का क्राइटेरिया है उस महासागर की गोदी में, शरण में आखिर आते हैं। ऊंचे से ऊंचे जल प्रवाह। सम्पूर्ण पृथ्वी में बड़ी-बड़ी ऊंचाई से निकले जल-प्रवाह उसकी शरण में आते हैं। **"आपूर्यमाणं अचल प्रतिष्ठं समुद्रमाप प्रविषन्तु यद्वत।"** ऐसा नहीं होता की सम्पूर्ण जल-प्रवाह के आने से सागर में उन्मत्तता आ गई हो, फूल गया हो। उसने एशिया को इधर धकेल दिया है, अफ्रिका को उधर धकेल दिया है तो 'आपूर्यमाणं' तरह-तरह के जल-प्रवाह आते हैं, तो 'अचल प्रतिष्ठं' अपनी प्रतिष्ठा, डिग्नीटी, सोवरनीटि, गम्भीरता कायम रखता है, क्योंकि सबका समावेश अति विशाल हृदय का है अति गम्भीर हृदय का है। जल-प्रवाह आ गया है, इस कारण निरा अंहकार की कोई सम्भावना नहीं। इस प्रकार का नेतृत्व राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ निर्माण करना चाहता है। नेताजी निर्माण करना नहीं चाहता, कार्यकर्ता इस तरह का निर्माण करना चाहता है। यह सारी बातें यदि हम ख्याल में रखें तो बाद में हमें ऐसा पता चलेगा कि हम लोग जो बड़ा सरल कार्य समझते थे कि परम पूजनीय गुरुजी ने कहा है कि १ प्रतिशत और ३ प्रतिशत को नेताजी खड़ा करना हम लोग समझते हैं कि यह आसान और सस्ता कार्य है, पर यह आसान और सस्ता कार्य नहीं है, बहुत कठिन कार्य है। इसमें बहुत मेहनत करनी पड़ती है। स्वयं आत्म निरीक्षण करते हुये स्वयं को ठीक बनाते-बनाते बड़ी मुश्किल हो जाती हैं। जिन लोगों को अपने उदाहरण से अच्छा बनाना है तो कितनी मेहनत करनी पड़ेगी। यह कोई सरल कार्य नहीं, ऐसा हमें कई वर्ष कार्य करने के पश्चात्, यह बात हम लोगों के ध्यान में आई।

स्वयमेव मृगेन्द्रता

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, पाली विभाग द्वारा प्रकाशित

मुद्रक : अजन्ता प्रिन्टर्स, फालना